

कुमार क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों में गतिशीलता का एक अध्ययन**Dr. Pratibha Rawat**

Assistant Professor

Chandrawati Tiwari Kanya P.G. College

Kashipur (Udham Singh Nagar)

‘श्रम’ शब्द को विभिन्न व्यक्ति अपने-अपने ढंग से भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। समाचार-पत्र, संचार माध्यम, लेखक तथा टीकाकार ‘श्रम’ को संगठित श्रम या श्रम संघों के रूप में प्रयुक्त करते हैं। राजनीतिक कार्यकर्ता तथा सामाजिक रूप से प्रबुद्धजन इसे ‘मेहनतकश समुदाय’ मानते हैं। अर्थशास्त्रियों के लिए ‘श्रम’ शब्द की परिमार्जित एवं सटीक परिभाषा देना अत्यन्त कठिन कार्य है। कुछ अर्थशास्त्री श्रम को उत्पादन के कई घटकों में से एक मानते हैं जबकि दूसरे अनेक लोग इसे राष्ट्र की श्रम शक्ति के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें रोजगारप्राप्त एवं बेरोजगार दोनों की कुल संख्या सम्मिलित है। श्रम वह भौतिक तथा मानसिक क्षमता या शक्ति है जो व्यक्तियों द्वारा उत्पादक प्रक्रिया में प्रयुक्त की जाती है। इसे व्यक्तियों की संख्या, मानव कार्य-दिवस अथवा अन्य रूप में वर्णित किया जा सकता है।¹

इसके अतिरिक्त कुछ अर्थशास्त्री उद्यमीय क्षमता को भी श्रम में समाहित करते हैं जिसका अर्थ वे संसाधनों के प्रबन्धन की क्षमता लेते हैं। अर्थशास्त्र क जनक विश्वविख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री एवं राजनीतिशास्त्र दार्शनिक **एडम स्मिथ** ने श्रम को ऐसा कोष माना है जो राष्ट्र को उसके उपभोग के लिए समस्त अनिवार्यताओं तथा सुविधाओं का सम्भरण करता है।² **एडम स्मिथ** ने उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम में भेद किया है। उसके अनुसार उत्पादक श्रम उस वस्तु के मूल्य में वृद्धि करती है जिसमें यह प्रयुक्त होती है। **स्मिथ** ने घरेलू नौकर को अनुत्पादक श्रम कहकर पुकारा है जो मूल्य में कुछ भी वृद्धि नहीं करता है।

कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 2(l) के अनुसार, “श्रमिक से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो प्रत्यक्ष या किसी एजेन्सी (जिसमें ठेकेदार भी सम्मिलित है) के माध्यम से मूल नियोक्ता की जानकारी से या बिना जानकारी के मजदूरी पर या बिना मजदूरी पर किसी निर्माण प्रक्रिया या निर्माण प्रक्रिया के लिए कार्य में आने वाले यन्त्र या भवन के किसी भाग की सफाई के लिए या निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित या उसके लिए किये जाने वाले किसी कार्य के लिए नियुक्त किया गया हो किन्तु इसमें भारतीय संघ की सशस्त्र सेनाओं के सदस्य सम्मिलित नहीं हैं³ यहाँ श्रमिक से अभिप्राय औद्योगिक श्रमिक से ही है। निर्माण प्रक्रिया श्रमिक होने अथवा न होने की प्रमुख कसौटी है। अतः केवल वे ही व्यक्ति श्रमिक की श्रेणी में सम्मिलित किये जा सकते हैं जो किसी निर्माण से सम्बन्धित हों। इसके परिणामस्वरूप लिपिक, जिसकी नियुक्ति किसी कार्यालय के लिए हुई हो, श्रमिक नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं कि केवल शारीरिक श्रम करने वाला व्यक्ति ही श्रमिक कहलाएगा, मानसिक श्रम करने वाला व्यक्ति भी श्रमिक कहलाएगा बशर्ते उसके कार्य का किसी विनिर्माणी प्रक्रिया से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध हो। लिपिक, कार्यालय अधिकारी, चिकित्सक, नर्स आदि श्रमिक की श्रेणी में नहीं आते क्योंकि ये विनिर्माण प्रक्रिया में किसी प्रकार की सहायता नहीं करते हैं।

श्रमिक का मजदूरी पर होना अनिवार्य नहीं है। बिना मजदूरी पाने वाले काम सीखने वाले व्यक्ति भी श्रमिक की श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं। श्रमिक के लिए यह आवश्यक है कि कारखाने में उसकी नियुक्ति अवश्य हो। मालिक और श्रमिक के मध्य अनुबन्ध होना चाहिए, जिसके अनुसार श्रमिक ने कारखाने में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। कार्य करने का केवल वचन देना और कार्य न करना उसे श्रमिक नहीं बनाता है। साथ ही श्रमिक का नाम कारखाने के मस्टर रोल या उपस्थिति पंजिका में अवश्य दर्ज होना चाहिए। जिन व्यक्तियों का नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं है वे श्रमिक नहीं हैं, चाहे उन्हें मजदूरी मिलती हो। श्रमिक की नियुक्ति दो प्रकार से हो सकती है:— (1) प्रत्यक्ष रूप से अथवा (2) एजेन्सी के माध्यम से। एजेन्सी में ठेकेदार भी सम्मिलित हैं। ठेकेदार के माध्यम से भी श्रमिक की नियुक्ति की जा सकती है, चाहे इसकी नियोक्ता को जानकारी हो अथवा नहीं।

औद्योगिक विकास में औद्योगिक श्रम की भूमिका

डेविड रिकार्डो ने श्रम का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखा है कि किसी वस्तु का मूल्य अथवा किसी दूसरी वस्तु की मात्रा जिसमें इसका विनिमय किया जाएगा श्रम जो उत्पादन के लिए आवश्यक है, की सापेक्ष मात्रा पर निर्भर करता है।⁴ रिकार्डो ने जोर देकर कहा है कि श्रम की मात्रा न कि श्रम के लिए चुकाई गई प्रतिपूर्ति विनिमय मूल्य में वृद्धि करती है। अपवादस्वरूप कलात्मक कार्यों का मूल्य पूर्णतः उनकी दुर्लभता पर निर्भर करता है। रिकार्डो के अनुसार

पूँजी भूतकालिक श्रम का प्रतिनिधि है। प्रत्येक पूँजीगत उपकरण किसी न किसी कच्चे माल से निर्मित होता है, अतः पूँजी-निर्माण श्रम के माध्यम से प्रारम्भ होता है। इस दृष्टि से श्रम की मात्रा में कमी का प्रभाव यह होता है कि माल के मूल्य में कमी आ जाती है। श्रम उत्पादन का साधन मात्र नहीं है अपितु उत्पादन का साध्य भी है। श्रमिक वर्ग देश की जनसंख्या का महत्वपूर्ण क्षेत्रक (Sector) तथा विकास के लाभों का लाभग्राही ही नहीं अपितु राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति का सबसे महत्वपूर्ण यन्त्र भी है। श्रम की यह दुहरी भूमिका न केवल श्रम संघ तथा प्रबन्ध के मध्य सम्बन्धों को प्रभावित करती है अपितु श्रम आय के आकार तथा नियमितता को भी प्रभावित करती है।¹

किसी भी देश के नागरिकों के जीवन-स्तर का अनुमान उनके द्वारा प्रयोज्य वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा एवं गुणवत्ता पर निर्भर करता है। ये पूँजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुएं औद्योगिक श्रम के सहयोग से ही विनिर्मित अथवा उत्पन्न की जाती हैं। इस प्रकार औद्योगिक श्रम की पर्यायता, कुशलता या दक्षता एवं उत्प्रेरण पर औद्योगिक उत्पादन निर्भर करता है जो अप्रत्यक्ष रूप से देशवासियों के जीवन-स्तर को प्रभावित करता है। यही कारण है कि औद्योगीकरण प्रक्रिया में मानवीय तत्व पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। औद्योगिक श्रमिकों की प्राप्ति के लिए सेवायोजकों द्वारा वैज्ञानिक भर्ती एवं चयन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। साथ ही औद्योगिक श्रम क प्रशिक्षण को और भी अधिक प्रभावकारी बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं ताकि औद्योगिक विकास में उनका सार्थक योगदान प्राप्त किया जा सके। आधुनिक युग में औद्योगिक श्रम, पूँजी एवं तकनीक से भी बढ़कर है। श्रम उत्पादन का साधन मात्र नहीं है अपितु उत्पादन का साध्य भी है। कार्यशील जनसंख्या राष्ट्रोन्नति की चाबी होती है जिसके माध्यम से विकास कार्य सम्पन्न किया जाता है। राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति का यह एक उपकरण है।

अपनी विचित्र प्रकृति के कारण श्रम एक नाशवान वस्तु है जिसका एक भी दिन संचय नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि श्रम का कोई संचय मूल्य नहीं होता। अपनी कीमत (मजदूरी) निर्धारण में माँग व पूर्ति की शक्तियों की विद्यमानता के कारण यह एक वस्तु मानी जाती है तथापि श्रम की इस वस्तु अवधारणा में उत्पादन के कई महत्वपूर्ण कारक सम्मिलित नहीं हैं। यन्त्रीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण श्रम को मशीन सदृश्य माना जाने लगा परन्तु शीघ्र ही इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे। परिणामस्वरूप श्रमिकों की कार्य दशाओं एवं श्रम कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। श्रमिकों के प्रति मालिकों के शत्रुतापूर्ण व्यवहार का स्थान मित्रवत व्यवहार ने ले लिया। इस प्रकार श्रम की मानवतावादी अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ। श्रम सम्मान को बनाये रखने के लिए श्रमिकों को अहस्तक्षेपनीय अधिकारों को भोगने के लिए अवसर प्रदान किया जाने लगा। वर्तमान में श्रम का “नागरिकता स्वरूप” उपयुक्त समझा जाने लगा है। श्रम की नागरिकता अवधारणा कर्मकारों को औद्योगिक नागरिक मानती है। यही कारण है कि उन नियमों एवं विनियमों जिनके अधीन उनसे कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, के निर्माण में उनसे सलाह ली जाती है। राजनैतिक लोकतन्त्र के समान औद्योगिक लोकतन्त्र जो इस अवधारणा का परिणाम है, में स्व-शासन एवं सेवायोजक-सेविवर्ग सम्बन्ध निहित हैं।¹

सेवा योजक-सेविवर्ग सम्बन्धों को अधिकतम सम्भव विधि द्वारा समाज की आवश्यकताओं के संवर्द्धन हेतु रचनात्मक प्रयासयुक्त साझेदारी माना गया है। श्रम तथा उद्योग दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, समाज के सह-सेवक हैं तथा एक की समृद्धि एवं प्रगति दूसरे की समृद्धि एवं प्रगति पर निर्भर करती है। औद्योगिक क्रान्ति ने मजदूरी पर निर्भर रहने वाले श्रमिक वर्ग को जन्म दिया है। वैसे तो भारत में कृषि, बागान, परिवहन तथा विनिर्माणी उद्योगों में मजदूरी के बदले काम करने वाले श्रमिकों का वर्ग विद्यमान है परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में केवल विनिर्माणी उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों को ही समाहित किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र में सबसे बड़ी संख्या में श्रमिकों को मिलों और कारखानों में रोजगार मिला हुआ है। कुल कार्यकारी जनसंख्या में औद्योगिक श्रमिकों का भाग 18.2 प्रतिशत है।¹ वृद्धिशील मशीनीकरण के बावजूद औद्योगिक श्रम, अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसकी दक्षता, सन्तुष्टि एवं विकास औद्योगिक विकास रूपी भवन की नींव है।

श्रम-गतिशीलता

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय औद्योगिक श्रम का बड़ा भाग ग्रामीण पृष्ठभूमि वाला है जो कृषि एवं कृषि सहायक क्रियाकलापों में संलग्न रहता है। ये औद्योगिक श्रमिक गांवों से आकर नगरों में अस्थायी रूप से बस जाते हैं और मिलों तथा कारखानों में काम करते हैं। ये औद्योगिक नगरों में स्थायी रूप से नहीं रहना चाहते और अपने गांवों से सम्बन्ध बनाए रखते हैं। अनेक श्रमिक तो गांवों में ही अपने परिवार छोड़ आते हैं और अवकाश प्राप्त कर अथवा काम पर अनुपस्थित होकर गांव जाते रहते हैं। भारत में अधिकांश औद्योगिक नगरों में काम करने वाले श्रमिक वहां आकर्षित होकर नहीं आए हैं। जनसंख्या में वृद्धि के कारण भूमि पर बढ़ते हुए जन-भार से उत्पन्न प्रच्छन्न बेरोजगारी से बाध्य होकर इन्होंने गांव छोड़ने का निश्चय किया है। वास्तव में इन्हें शहरों की ओर धकेला जाता है न कि ये

खिंचकर आते हैं। औद्योगिक श्रमिकों का इस प्रकार पलायन प्रवसन कहलाता है। गतिशीलता एक व्यापक शब्दावली है जिसमें प्रसन भी सम्मिलित है। औद्योगिक श्रमिकों का अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों, एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक कृत्य से दूसरे कृत्य में नियोजित होना ही 'श्रम गतिशीलता' कहलाता है।

औद्योगिक श्रमिकों की यह गतिशीलता जहाँ एक ओर स्वयं श्रमिकों के लिए फायदे का सौदा रही है वहीं दूसरी ओर नियोजकों को इससे हानि होती है क्योंकि पुराने श्रमिकों को नये श्रमिक पूर्णरूपेण प्रतिस्थापित नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार दक्षता में गिरावट आती है जिसका उत्पादिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि उद्योग पुराने श्रमिकों के स्थान पर अधिक दक्ष श्रमिकों की भर्ती करते हैं तो उच्च मजदूरी का भुगतान करने के कारण विनिर्मित उत्पाद (उत्पादों) की उत्पादन लागत में वृद्धि हो जायेगी जिसके परिणामस्वरूप फर्म की लाभप्रदता में कमी आयेगी।

भारत सरीखे विकासशील देशों में कम कृषि आय और कृषि बेरोजगारी मुख्य रूप से व्यक्ति को उन क्षेत्रों में प्रवसित करने के लिए बाध्य करती है जहाँ पर रोजगार के अधिक अवसर हैं अर्थात् कृषि क्षेत्र से प्रवसन औद्योगिक क्षेत्रों की ओर होता है। प्रारम्भिक अवस्था में ये ग्रामीण श्रमिक उद्योगों में अकुशल कार्य में नियोजित होते हैं। उसके बाद कौशल विकास का न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के बाद कृत्य परिवर्तन कर लेते हैं। फिर यदि किसी अन्य स्थान, उद्योग अथवा कृत्य पर अधिक भुगतान प्राप्त होने की आशा होती है तो ये उसी के अनुरूप नये स्थान, उद्योग अथवा कृत्य पर नियोजित हो जाते हैं। उच्च मजदूरी की प्रत्याशा, प्रोन्नति के अवसर, अधिक सुखद कार्य वातावरण, भृत्ति रोजगार एवं स्व-रोजगारपरक योजनाओं की विफलता श्रम गतिशीलता में अभिवृद्धि करते हैं। एशियाई देशों में हुए विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं ग्रामीण गरीब व्यक्ति का गिरता हुआ आर्थिक-स्तर ही गतिशीलता के मुख्य कारण हैं। शिक्षा की अच्छी सुविधाएं, मनोरंजन के स्वस्थ साधन, आवासीय सुविधा आदि खींच कारक हैं जो श्रम गतिशीलता में वृद्धि करते हैं। कुछ धक्का कारक भी हैं जो मनुष्य को प्रवसन के लिए बाध्य करते हैं जिससे गतिशीलता में वृद्धि होती है। ये कारक हैं- निर्धनता, ऋणग्रस्तता, सामाजिक विषमता, बेरोजगारी, जबरी छुट्टी, निष्कासन, प्राकृतिक संकट आदि।

अध्ययन का महत्व

भारत सरीखे विशाल जनसंख्यायुक्त विकासशील राष्ट्र के तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण एक अनिवार्यता बन चुका है। औद्योगीकरण जहाँ एक ओर अवस्थापना सुविधाओं, प्रचुर पूँजी, तकनीकी विकास, राजकोषीय प्रोत्साहन जैसे तत्वों पर आधारित है, वहीं दूसरी ओर श्रम का महत्व को भी कम करके नहीं आंका जा सकता है। प्रशिक्षित, कुशल एवं सन्तुष्ट श्रम शक्ति औद्योगिक विकास की आधारशिला है क्योंकि श्रम उत्पत्ति का सक्रिय साधन है। अपने संगठन और राष्ट्रीय आय में योगदान के कारण औद्योगिक श्रम देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

अशिक्षा के कारण अधिकांश औद्योगिक श्रमिक उद्योगों की समस्याओं से परिचित नहीं हैं। इतना ही नहीं वे प्रदेश, धर्म, जाति, भाषा आदि के आधार पर बंटे रहते हैं। श्रम की आधिक्य, अनुपस्थितियता, हड़तालें, संघर्ष, प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी आदि उनकी मुख्य समस्याएं हैं। वर्तमान स्फीतिक दबावों के कारण निर्वाह लागत में वृद्धि के अनुरूप उनकी मजदूरी में वृद्धि नहीं हुई है। यह सर्वविदित है कि भारतीय उद्योगपति मजदूरी देने के सम्बन्ध में उदार नीति नहीं अपनाते हैं जबकि स्वयं सरकार द्वारा औद्योगिक नीति के माध्यम से उद्योगों को प्रदत्त कर राहतों, छूटों, प्रोत्साहनों एवं वित्तीय सुविधाओं सहित अनेक राजकोषीय प्रेरणाओं का लाभ उठाते रहते हैं। श्रम दशा के उन्नयन एवं वृद्धित मजदूरी एवं अन्य श्रम कल्याण उपायों की प्राप्ति के लिए हड़ताल की प्रभाविता को स्वीकार किया गया है। आर्थिक स्थिति में उन्नयन के लिए श्रमिकों में संगठित होकर कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है। समाजवादी लोकतन्त्रात्मक औद्योगिक ढांचे के विकास हेतु श्रम-हित संरक्षण के लिए श्रम संघ स्थापना को विधायी दर्जा प्रदान कर दिया गया है। इतना ही नहीं श्रम हित संरक्षण हेतु अनेक श्रम कानूनों का निर्माण किया गया है जिनमें भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948; श्रम संघ अधिनियम 1923; श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923; भृत्ति भुगतान अधिनियम, 1936; न्यूनतम भृत्ति अधिनियम, 1948; बोनस अधिनियम, 1965; ग्रेच्युइटी भुगतान अधिनियम, 1971; कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 प्रमुख हैं। परन्तु खेद का विषय है कि अधिकांश उद्योगों द्वारा श्रम कानूनों का पालन नहीं किया जाता है।

यह देखने में आया है कि श्रम संघों को उपलब्ध संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों की जानकारी श्रमिकों को भी नहीं है। श्रम संघों का नतुत्व भी गैर-सदस्यों एवं राजनीतिज्ञों के हाथों में है जो श्रमिकों के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं माने जा सकते हैं। प्रभुत्व के लिए प्रतिस्पर्द्धी श्रम संघों में संघर्ष, कारखानों में सुव्यवस्थीकरण चालू करना, छंटनी की आशंका, श्रम संघ नेताओं को अपमानित करना तथा उन्हें हतोत्साहित करने के उद्देश्य से झूठे मामलों में फंसाना जैसे घटक श्रम-हितों पर कुठाराघात हैं। बीमारी, बेरोजगारी, औद्योगिक दुर्घटनाएं तथा वृद्धावस्था श्रमिकों की मुख्य

चिन्ताएं हैं। सरकार द्वारा श्रम-कल्याण उपायों के क्रियान्वयन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। श्रमिकों के लिए बेरोजगारी अनुदान तथा वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था अभी तक नहीं की गयी है। श्रमिकों का लाभों में सहभाजन तथा प्रबन्ध में भागिता जैसी प्रेरणात्मक योजनाएं अभी तक पूर्णरूपेण परिलक्षित नहीं हो पाई हैं। भूमण्डलीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण का भी श्रम हितों पर विपरीत प्रभाव ही पड़ा है। आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध उठा लिये जाने तथा खुले आयातों से देशी उद्योगों में उत्पादन कम होने लगा है। इतना ही नहीं बहुत सी औद्योगिक इकाइयों के बन्द होने की भी आशंका है। परिणामतः श्रमिकों को छंटनी का सामना करना पड़ सकता है।

भारती औद्योगिक श्रमिकों का शैक्षिक एवं तकनीकी ज्ञान स्तर सामान्यतः निम्न है जिसके कारण उन्हें बाध्य होकर अपेक्षाकृत न्यून मजदूरी या पारिश्रमिक पर काम करना पड़ता है। अल्प आय के कारण उनका रहन-सहन का स्तर भी पर्याप्त निम्न ही रहता है। अधिक आय प्राप्ति के उद्देश्य से वे एक उद्योग से काम छोड़कर दूसरे उद्योग में काम करने लगते हैं। परन्तु श्रमाधिक्य एवं अशिक्षा तथा कम अनुभव के कारण कई बार वे कृत्य परिवर्तन में कामयाब नहीं भी हो पाते हैं अर्थात् उनकी गतिशीलता का परिमाण कम होता है। दूसरी ओर ऐसे भी प्रशिक्षित, अनुभवी एवं कुशल श्रमिक होते हैं जो रोजगार के बेहतर अवसर मिलते ही त्यागपत्र देकर नई जगह कार्यभार ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् उनमें अधिक गतिशीलता पायी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ औद्योगिक श्रमिक ऐसे भी होते हैं जो पारिवारिक या अन्य कारणों से बेहतर अवसरों का लाभ उठाना नहीं चाहते अर्थात् उनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। (अध्ययन का यह विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा मेरी जानकारी में अभी तक इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। औद्योगीकरण के विस्तार के साथ ही औद्योगिक श्रमिकों की गतिशीलता में भी वृद्धि होना स्वभाविक है जिसके कारणों एवं प्रभावों का अध्ययन ज्वलन्त एवं समीचीन है।)

अध्ययन के उद्देश्य

वर्तमान अध्ययन द्वारा कुमाऊँ क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध में निम्नलिखित को जानने का प्रयास किया गया है:-

- (1) क्षेत्र में औद्योगिक श्रमिकों की आर्थिक स्थिति क्या है?
- (2) क्षेत्र में औद्योगिक श्रम गतिशीलता के प्रेरक घटक कौन से हैं?
- (3) क्षेत्र में औद्योगिक श्रम गतिशीलता के क्या आर्थिक प्रभाव रहे हैं?
- (4) क्षेत्र में औद्योगिक श्रम गतिशीलता के मार्ग में बाधक घटक कौन से हैं?
- (5) औद्योगिक श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए किन उपायों की आवश्यकता है?

कुमाऊँ क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों की आर्थिक स्थिति एवं गतिशीलता के कारणों तथा प्रभावों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने के उपरान्त उनकी आर्थिक स्थिति के उन्नयन के सम्बन्ध में उपयुक्त उपाय भी प्रस्तुत किये गये हैं। औद्योगिक श्रमिकों की समस्याओं का पता लगाकर उन्हें दूर करने के उपाय भी अध्ययन के सुझावों में समाहित किये गये हैं ताकि औद्योगिक श्रमिकों की उत्पादिता में वृद्धि हो सके तथा क्षेत्र के औद्योगिक विकास में उनका योगदान प्राप्त हो सकें। साथ ही ऐसे उपाय भी प्रस्तुत किये गये हैं जिनके द्वारा गतिशीलता संवर्द्धन सम्बन्धी विभिन्न श्रम कानूनों का सुदृढतापूर्वक पालन सुनिश्चित किया जा सके तथा श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सके।

अध्ययन का क्षेत्र

गहन अध्ययन एवं विश्लेषण के दृष्टिकोण से वर्तमान अध्ययन का क्षेत्र निम्नवत् सीमित कर दिया गया है-

1. केवल उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र की सीमाओं के अन्तर्गत वासित औद्योगिक श्रमिकों का अध्ययन।
2. कुमाऊँ क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों की केवल गतिशीलता का अध्ययन।
3. गतिशीलता से सम्बन्धित केवल आर्थिक चरों का अध्ययन।

परिकल्पनाएं

निष्कर्षों के विश्लेषण हेतु निम्न परिकल्पनाएं की गयी हैं-

1. औद्योगिक विकास एवं औद्योगिक श्रम रोजगार परिमाण एक दूसरे से स्वतन्त्र है।
2. औद्योगिक रोजगार की स्थिति एवं औद्योगिक श्रम गतिशीलता के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्ययन पद्धति

वर्तमान अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार के समंक पर आधारित है। द्वितीयक समंक का संकलन प्रामाणिक स्रोतों यथा-कार्यालय, निदेशक उद्योग उत्तराखण्ड; देहरादून; कार्यालय, महाप्रबन्धक समस्त जिला उद्योग केन्द्र कुमाऊँ मण्डल, कार्यालय समस्त जिला अर्थ एवं संख्याधिकारी, कुमाऊँ मण्डल; कार्यालय श्रमायुक्त, हल्द्वानी; राज्य नियोजन संस्थान; राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक शोध परिषद, नई दिल्ली; केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन, नई दिल्ली, राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण संगठन, नई दिल्ली आदि से किया गया है। रोजगार, औद्योगिक विकास एवं

औद्योगिक श्रम से सम्बन्धित विभिन्न आयोगों, जांच समितियों एवं कार्य-समूहों के प्रतिवेदनों तथा शासकीय निकायों एवं संस्थानों के वार्षिक प्रतिवेदनों का भी यथा स्थान लाभपूर्ण रूप में उपयोग किया गया है। प्राथमिक समंक संकलन हेतु—

1. उद्योग, औद्योगिक श्रम, औद्योगिक रोजगार एवं औद्योगिक/आर्थिक विकास से प्रत्यक्षतः/अप्रत्यक्षतः सम्बन्धित शासकीय प्राधिकारियों के सम्मुख प्रश्नावली प्रस्तुत की गई है।
2. कुमाऊँ क्षेत्र के औद्योगिक श्रमिकों की आर्थिक-स्थिति एवं गतिशीलता का अध्ययन करने के लिए निदर्शन पद्धति द्वारा क्षेत्र सर्वेक्षण सम्पन्न किया गया है।
3. न्यादर्श द्वारा चयनित औद्योगिक श्रमिकों के व्यक्तिगत साक्षात्कार भी सम्पन्न किये गये हैं जिससे रोजगार की स्थिति, आय, जीवन-स्तर, दक्षता-स्तर, पारिवारिक-संरचना, शैक्षिक-स्तर, अभिरूचियां जैसे तथ्यों का पता लगाया गया है। न्यादर्श आकार निम्नवत् था—

औद्योगिक इकाई का स्तर	चयनित औद्योगिक श्रमिकों की संख्या
वृहदस्तरीय	140
मध्यमस्तरीय	100
लघुस्तरीय	60
योग	300

औद्योगिक श्रमिकों के चयन में अध्ययनगत क्षेत्र द्वारा आच्छादित जनपदों की संख्या, औद्योगिक इकाइयों की संख्या, औद्योगिक इकाइयों का स्तर, नियोजित औद्योगिक श्रमिकों की संख्या तथा उनकी श्रेणी यथा—कुशल, अर्द्ध-कुशल एवं अकुशल को विचार में लिया गया है जिससे सभी क्षेत्रों, वर्गों एवं श्रेणियों को उचित प्रतिनिधित्व मिल सका है। उद्योग, श्रम तथा आर्थिक विकास से सम्बद्ध विभिन्न शासकीय अभिकरणों के उत्तरदायी प्राधिकारियों के साथ औद्योगिक श्रमिकों के अल्प-रोजगार, निम्न आय एवं जीवन-स्तर, गतिशीलता की स्थिति तथा निम्न दक्षता-स्तर के लिए उत्तरदायी कारणों पर चर्चा की गई है। उपलब्ध सूचनाओं एवं समंक का विश्लेषण करने हेतु अनुपातों, प्रतिशतों एवं सूचकांकों का प्रयोग किया गया है। समंक विश्लेषण एवं निर्वचन हेतु यथा स्थान आवश्यकतानुसार विभिन्न अन्य सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग भी किया गया है। प्रत्यर्थी उत्तरदेयता मूल्यांकन हेतु लिफ्ट अनुमापन प्रविधि का उपयोग किया गया है।

निष्कर्ष—

सुदृढ औद्योगिकरण श्रम के सहयोग बिना सम्भव नहीं है। प्रशिक्षित, कुशल एवं सन्तुष्ट श्रम शक्ति औद्योगिक विकास की आधार शिला है। उत्पत्ति का सक्रिय साधन होने के कारण श्रम का अपना विशिष्ट स्थान है। स्फीतिक दबावों के कारण जीवन निर्वाह लागत में सार्थक वृद्धि हुई है जबकि उसी अनुपात में श्रमिकों की मजदूरी एवं वेतन में वृद्धि नहीं हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप उनके जीवन-स्तर में गिरावट आई है। यह देखने में आया है कि उद्योगपति सरकार द्वारा प्रदत्त राहतों, छूटों, प्रोत्साहनों एवं वित्तीय सुविधाओं सहित अनेक राजकोषीय प्रेरणाओं का स्वयं तो भरपूर लाभ उठाते हैं परन्तु श्रम दशाओं के उन्नयन, मजदूरी दरों में वृद्धि तथा श्रम कल्याण उपायों की उपलब्धता पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते हैं।

यद्यपि समाजवादी लोकतन्त्रात्मक औद्योगिक ढाँचे के विकास की दिशा में श्रम-हित संरक्षण के लिए श्रम संघ स्थापना को विधायी दर्जा प्रदान किया गया है इसके अतिरिक्त श्रम हित संरक्षण तथा श्रम कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम लागू हो जो उद्योगों द्वारा पालन किये जाये व श्रमिकों का शैक्षिक एवं तकनीकी ज्ञान स्तर तथा कौशल स्तर में वृद्धि करना। जिससे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति व श्रम गतिशीलता में निरन्तर सुधार लाया जा सके।

सन्दर्भ

1. Robinson W. James and Walker W. Roger, Labour Economics and Labour Relations, Ronald, New York, 1973, p-5
2. Smith Adam "An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations" (Ed.), p-vii
3. Indian Factories Act, 1948, Sec 2 (I)
4. Ricardo David, The Principles of Political Economy and Taxation, London, 1817, p-5
5. Kuhn A, Labour Institutions and Economics, p-7
6. Mehrotra, S.N., Labour Problems in India, S. Chand & Company Limited, New Delhi, 1981, p-2
7. Misra and Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2013, p-151